आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

(16) इसलिए हम मानते हैं कि तीन प्रतिवादी न्यायालय की अवमानना के अपराध के दोषी नहीं हैं और उनके खिलाफ नियम को खारिज कर दिया गया है।

एस.एस. संधावालिया, जे.-मैं सहमत हूं।

ए.एस. बैंस, जे-मैं भी सहमत हूं।

एन.के.एस.

पूरी बेंच

एस.एस. संधावलिया, सी.जे., पी.सी. जैन और एम. आर. शर्मा, जे.जे. के सामने

आनंद प्रकाश,-याचिकाकर्ता

बनाम

भारत भूषण राय और अन्य,- प्रतिवादी।

1978 का नागरिक संशोधन संख्या 1878

3 जून 1981.

सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का V) धारा 35-बी और 148- मुकदमे के पक्ष को लागत के भुगतान के अधीन स्थगन दिया गया- ऐसा पक्ष सुनवाई की स्थगित तिथि पर लागत का भुगतान करने से इनकार कर रहा है लेकिन इसके लिए कदम उठाने का अधिकार छोड़ रहा है स्थगन मंजूर कर लिया गया - लागत का भुगतान करने से इंकार कर दिया गया न्यायालय क्या मुकदमे या बचाव के अभियोजन को अस्वीकार करने के लिए बाध्य है - धारा 148 के तहत शक्ति - क्या अभी भी प्रयोग किया जा सकता है।

माना गया, (बहुमत के अनुसार एस.एस. संधवालिया, सी.जे. और पी.सी. जैन, जे; एम.आर. शर्मा, जे. विरोधाभासी) कि नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 35-बी के प्रावधानों की एक मात्र जांच से पता चलेगा कि विधायिका ने बनाया है इसका इरादा बिल्कुल

स्पष्ट है और किसी भी संदेह से परे है कि प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं और इनका अनुपालन न करने पर दंडात्मक परिणाम भुगतने पड़ेंगे जैसा कि इसमें प्रावधानित है। यदि पक्ष लागत लगाने वाले आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख को लागत का भुगतान करने में विफल रहता है तो अदालत के लिए यह अनिवार्य है कि वह मुकदमे के अभियोजन या बचाव की अनुमति न दे जैसा भी मामला हो और कि अपराधी पक्ष के विरुद्ध अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में न्यायालय के समक्ष कोई अन्य अनावश्यक विचार आड़े नहीं आएगा। कोर्ट इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जाएगा कि स्थगन की मांग करने वाला पक्ष मुकदमे में देरी करने का दोषी है या नहीं

आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राय एवं अन्य (पी. सी. जैन, जे.)

इस पक्ष के लिए सबूत पेश करना उपयोगी नहीं था या जो स्थगन मांगा गया था वह अनावश्यक था। हालाँकि ऐसे मामलों में जहां डिफ़ॉल्ट पक्ष के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के परिणामस्वरूप लागत का भुगतान नहीं किया जाता है तो अदालत अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर डिफ़ॉल्ट पक्ष के पक्ष में संहिता की धारा 148 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करेगी। यदि ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए एक मजबूत सुगमता बनाई गई है, (पैरा 10 और 14)

हकमी एवं अन्य बनाम पीताम्बर एवं अन्य, 1978, पी.एल.आर. 256,

मानक चंद बनाम सुरेश चंद जैन, 1979, पी. अल. जे. 332,

निक्का सिंह एवं अन्य बनाम पूरन सिंह एवं अन्य, 1979 पी.एल.जे. 535,

मंजीत सिंह बनाम भारतीय स्टेट बैंक 1980, करंट लॉ जर्नल (सिविल) 361.

खारिज कर दिया गया।

माना गया (प्रति एम. आर. शर्मा, जे. कॉन्ट्रा) कि संहिता की धारा 35-बी प्रकृति में निर्देशिका है लेकिन फिर भी अदालतों के लिए इस प्रावधान की अनदेखी करना उचित नहीं होगा। यदि उचित समय पर कोई आपत्ति उठाई जाती है तो अदालत कानून के पत्र के अनुसार कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगी जब तक कि डिफ़ॉल्ट वादी एक अलग पाठ्यक्रम अपनाने के लिए एक मजबूत मामला नहीं बनाता है। (पैरा 31)

माननीय मुख्य न्यायाधीश प्रेम चंद जैन कार्यवाहक ने 12 फरवरी, 1980 को एकल पीठ द्वारा मामले को संदर्भित किया गया और मामले में शामिल एक महत्वपूर्ण प्रश्न कानून की राय के लिए माननीय श्री प्रेम चंद जैन और माननीय श्री न्यायमूर्ति हरबंस लाल की एक डिवीजन बेंच को भेजा। डिवीजन बेंच ने मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एस.एस. संधावालिया, माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन और माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन की पूर्ण पीठ के पास भेज दिया। श्री न्यायमूर्ति एम. आर. शर्मा ने 10 सितंबर, 1980 को पूर्ण पीठ ने अंततः 3 जून, 1981 को मामले का फैसला किया।

धारा 115 सी.पी.सी. के तहत याचिका के आदेश में संशोधन हेतु श्री पी. एल. आहूजा उप-न्यायाधीश तृतीय श्रेणी करनाल की अदालत ने दिनांक 6 सितंबर, 1978 को प्रतिवादी को आगे मुकदमा चलाने की अनुमति नहीं दी – उसके 27 जुलाई, 1977 के आवेदन और मुख्य मुकदमे में बचाव को खत्म करने के लिए सादे झगड़े की प्रार्थना को खारिज कर दिया। बर्खास्त कर दिया गया है और 27 जुलाई 1977 के आवेदन की कार्यवाही में वादी को गवाह के रूप में उपस्थित होने के लिए वापस बुलाने की अनुमति दी गई और पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

याचिकाकर्ता की ओर से वकील वी.के. जैन

प्रतिवादियों की ओर से सी. बी. गोयल, वकील

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

प्रेम चंद जैन, जे.

(1) मैंने अपने विद्वान भाई एम. आर. शर्मा, जे. के निर्णय का अध्ययन किया है और अपने विद्वान भाई के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ मैं स्वयं को उनके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ पाता हूं।

(2) जिन तथ्यों के कारण पूर्ण पीठ द्वारा निर्णय लेने के लिए प्रश्न का संदर्भ आवश्यक हो गया, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है:

(3) याचिकाकर्ता आनंद प्रकाश ने रुपये की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। भारत भूषण राय और एक अन्य प्रतिवादी के खिलाफ 4,000 रु. इस से पहले कि वादी की गवाही

दर्ज की जा सके प्रतिवादियों की ओर से इस आशय का एक आवेदन दायर किया गया था कि श्रीमती धन्वंतरी देवी प्रतिवादी नंबर 2 की मृत्यु हो गई थी और चूंकि उनके कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था मुकदमा समाप्त हो गया था। वादी ने श्रीमती धन्वंतरि देवी की मृत्यु के तथ्य को स्वीकार किया। प्रतिवादियों द्वारा दी गई मृत्यु की तारीख पर विवाद किया, जिसके परिणाम स्वरूप पार्टियों को श्रीमती धन्वंतरि देवी की मृत्यु की तारीख के बारे में सबूत पेश करने का निर्देश दिया गया। कुछ सबूत दिए जाने के बाद मामले को पक्षों के शेष साक्ष्य दर्ज करने के लिए 23 अगस्त, 1978 तक के लिए स्थगित कर दिया गया, जिस तारीख को प्रतिवादियों की ओर से इस आधार पर स्थगन की प्रार्थना की गई थी कि उनके वकील स्टेशन से बाहर गए थे। रुपये के भुगतान की शर्त पर न्यायालय द्वारा स्थगन की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। लागत के रूप में 35 और पक्षों के साक्ष्य के लिए मामला 30 अगस्त 1973 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। 30 अगस्त 1978 को, प्रतिवादियों ने कहा कि वे लागत का भुगतान नहीं करना चाहते थे क्योंकि वे कोई सबूत नहीं देना चाहते थे। इस पर वादी द्वारा आदेश 18 नियम 17 सहपठित धारा 151 और 35-बी सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित) के तहत इस आशय का एक आवेदन दायर किया गया था कि प्रतिवादियों ने भुगतान करने से इनकार कर दिया था। 35 रुपये की लागत जानबूझकर मुकदमे की कार्यवाही में देरी करने के लिए और प्रतिवादियों को अपने बचाव में आगे मुकदमा चलाने से वंचित कर दिया गया। संहिता के आदेश 18 नियम 17 के तहत की गई दूसरी प्रार्थना जिससे हमें इस याचिका में कोई सरोकार नहीं है यह थी कि वादी को गवाह के रूप में वापस बुलाने की अनुमति दी जाए। प्रतिवादियों की ओर से आवेदन का विरोध किया गया विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश पूरे मामले पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि चूंकि प्रतिवादी 35 रूपए की लागत का भुगतान करने में विफल रहे इसलिए उन्हें 27 जुलाई, 1977 के अपने आवेदन पर आगे मुकदमा चलाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। वादी की दलील है कि

प्रतिवादियों का बचाव रद्द कर दिया गया, अस्वीकार कर दिया गया। यह है जैसा कि पहले देखा गया विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश के उस आदेश के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण याचिका दायर की गई है।

(4) उपरोक्त याचिका 12 फरवरी 1981 को मेरे सामने सुनवाई के लिए आई। यह देखते हुए कि याचिका में शामिल बिंदु काफी महत्वपूर्ण था मैंने उचित समझा कि मामला एक बड़ी पीठ द्वारा तय किया जाना चाहिए। नतीजतन, 12 फरवरी, 1980 के अपने आदेश के तहत मैंने निर्देश दिया कि याचिका की सुनवाई एक डिवीजन बेंच द्वारा की जाए। जब मामला डिवीजन बेंच के सामने सुनवाई के लिए आया तो लंबी दलीलें सुनी गईं और फैसला सुरक्षित रख लिया गया। निर्णय सुनाए जाने से पहले मंजीत सिंह बनाम भारतीय स्टेट बैंक (1) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच का फैसला मेरे संज्ञान में आया जिसने बेंच द्वारा लिए जा रहे दृष्टिकोण के विपरीत दृष्टिकोण अपनाया था। परिणाम यह हुआ कि मामले को बड़ी पीठ द्वारा निर्णय लेने के लिए भेजा गया। इस तरह हम मामले को समझ गए हैं।

(5) डिविजन बेंच के समक्ष याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री जैन का तर्क यह था कि संहिता की धारा 35-बी के प्रावधान अनिवार्य हैं और भुगतान न करने की स्थिति में लागत लगाने के आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख पर लागत की गणना के लिए यह न्यायालय के लिए अनिवार्य था कि वह किसी पक्ष को मामले के अनुसार मुकदमा चलाने या बचाव से वंचित कर दे। मामले के तथ्यों पर विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादियों के अनुरोध पर मामले को स्थगित कर दिया गया था ताकि वे 35 रुपये लागत के रूप में भुगतान पर साक्ष्य का नेतृत्व कर सकें। कि लागत सुनवाई की अगली तारीख पर जानबूझकर भुगतान नहीं की गई थी और केवल आवेदन के अभियोजन को अस्वीकार करने में विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश का आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और बिना अधिकार क्षेत्र के था और एक डिफ़ॉल्ट के रूप में किया गया था। लागत का भुगतान करने के बाद, अदालत के पास प्रतिवादियों को अपने बचाव में आगे मुकदमा चलाने से रोकने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था।

(6) दूसरी ओर जो तर्क देने की मांग की गई थी प्रतिवादियों के विद्वान वकील का कहना था कि धारा 35-बी के प्रावधान निर्देशिका थे और सुनवाई की अगली तारीख पर लागत का भुगतान न करने की स्थिति में न्यायालय बाध्य नहीं था।

(1) 1980 सी.एल.जे. (सिविल) 361

जैसा भी मामला हो किसी पक्ष को मुकदमा चलाने या बचाव से वंचित करना। विद्वान वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि मौजूदा मामले में प्रतिवादियों की ओर से कार्यवाही में देरी करने का कोई इरादा नहीं था; प्रतिवादियों द्वारा इस आधार पर स्थगन की मांग की गई थी कि उनके वकील स्टेशन से बाहर गए थे सुनवाई की अगली तारीख पर प्रतिवादियों ने पाया कि उनके लिए मृत्यु की तारीख के संबंध में कोई साक्ष्य देना आवश्यक नहीं था। श्रीमती धन्वंतरि देवी और इस स्थिति में विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा प्रतिवादियों को केवल आवेदन पर मुकदमा चलाने की अनुमति न देना उचित था। इसे विद्वान वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया। इन तथ्यों पर प्रतिवादियों को अपने बचाव में आगे मुकदमा चलाने की अनुमति न देने के उद्देश्य से संहिता की धारा 35-बी के प्रावधानों को लागू करने का शायद ही कोई औचित्य हो सकता है।

मामले से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए संहिता की धारा 35-बी के प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा। जो इस प्रकार है:-

> "35-बी. देरी करने की लागत(1) यदि किसी मुकदमे की सुनवाई के लिए या उसमें कोई कदम उठाने के लिए तय की गई किसी तारीख पर मुकदमे का एक पक्ष:-
>
> (ए) उस तारीख को वह कदम उठाने में विफल रहता है जो उसे इस संहिता के तहत या इसके तहत उठाने की आवश्यकता थी, या
>
> (बी) ऐसा कदम उठाने के लिए या सबूत पेश करने के लिए या किसी अन्य आधार पर स्थगन प्राप्त करता है;
>
> न्यायालय दर्ज किए जाने वाले कारणों से एक आदेश दे सकता है जिसमें ऐसे पक्ष से दूसरे पक्ष को ऐसी लागत का भुगतान करने की आवश्यकता होगी, जो न्यायालय की राय में उसके द्वारा किए गए खर्चों के संबंध में दूसरे पक्ष की प्रतिपूर्ति के लिए उचित रूप से पर्याप्त हो। उस तारीख पर

अदालत में उपस्थित होने और ऐसे आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख पर ऐसी लागत का भुगतान आगे अभियोजन के लिए एक शर्त होगी-

(ए) वादी द्वारा मुकदमा, जहां वादी को ऐसे दंडों का भुगतान करने का आदेश दिया गया था;

आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राय एवं अन्य। (पी. सी. जैन, जे.)

(बी) प्रतिवादी द्वारा बचाव, जहां प्रतिवादी को ऐसी लागत का भुगतान करने का आदेश दिया गया था।

स्पष्टीकरण-जहां प्रतिवादियों या प्रतिवादियों के समूहों द्वारा अलग-अलग बचाव किए गए हैं, ऐसी लागत का भुगतान ऐसे बचाव पक्ष द्वारा बचाव के आगे अभियोजन के लिए एक शर्त होगी- जैसा कि आदेश दिया गया है, प्रतिवादियों के समूह या समूह ऐसी लागतों का भुगतान करने के लिए न्यायालय द्वारा।

(2) उप-धारा (1) के तहत भुगतान करने का आदेश दिया गया यदि खर्च का भुगतान किया जाता है तो उसे मुकदमे में पारित डिक्री की लागत में शामिल नहीं किया जाएगा लेकिन अगर ऐसी लागत मैं भुगतान नहीं किया जाता है तो ऐसी लागतों की राशि और उस व्यक्ति के नाम और पते को दर्शाते हुए एक अलग आदेश तैयार किया जाएगा जिसके द्वारा ऐसी लागतें देय हैं और इस प्रकार तैयार किया गया आदेश ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ निष्पादित किया जाएगा।"

धारा 35-बी को वर्ष 1976 में सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का अधिनियम संख्या 104) द्वारा क़ानून मैं पेश किया गया था इस प्रावधान को लागू करने का उद्देश्य जैसा कि उद्देश्यों से स्पष्ट है और ऐसा प्रतीत होता है कि उद्देश्य मुकदमेबाजी करने वाले पक्षो की देरी की रणनीति पर अंकुश लगाना है- मामले का त्वरित निपटान सुनिश्चित करने और हतोत्साहित करने के लिए पक्षों को समझाना बेईमान वादियों को अनावश्यक स्थगन प्राप्त करने

से- धारा 35-बी के विश्लेषणात्मक अध्ययन से पता चलता है कि कब मुकदमे की सुनवाई के लिए या किसी सुनवाई के लिए निर्धारित किसी भी तारीख पर उसमें कदम उठाने पर मुकदमे का एक पक्ष कदम उठाने में विफल रहता है वह कदम जो उसे संहिता के तहत या उसके तहत उठाना आवश्यक है। ऐसा कदम उठाने के लिए या समर्थक के लिए स्थगन प्राप्त करता है न्यायालय द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने या किसी अन्य आधार पर ऐसा करने पर विवेकाधिकार और दर्ज किए जाने वाले आधार पर क्षतिपूर्ति लागू करें स्थगन की मांग करने वाले पक्ष पर लागत जिसकी राय में न्यायालय दूसरे पक्ष को प्रतिपूर्ति करने के लिए उचित रूप से पर्याप्त हो। अदालत में उपस्थित होने में उसके द्वारा किए गए खर्चों के संबंध में उस तारीख और अगली तारीख को ऐसी लागतों का भुगतान ऐसे आदेश की तारीख आगे की पूर्व शर्त होगी कि वादी द्वारा मुकदमे का अभियोजन या बचाव पक्ष द्वारा बचाव उपधारा (2) के अंतर्गत आगे यह प्रावधान किया गया है कि यदि ऐसा भुगतान नहीं किया गया तो लागतें प्रदान की गई लागतों में शामिल नहीं की जाएंगी और जिन मुकदमे में डिक्री पारित की गई और ऐसी लागत जो योग्य होगी अलग-अलग आदेश को निष्पादित करके वसूली होगी ऐसी लागतों की राशि दर्शाते हुए दर तैयार की जानी चाहिए

उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनके द्वारा ऐसी लागतें देय हैं।

(7) पक्षों के विद्वान वकील की संबंधित दलीलों पर जिस प्रश्न का निर्धारण आवश्यक है वह यह है कि क्या अदालत के लिए यह अनिवार्य है कि वह मुकदमे या बचाव पक्ष पर मुकदमा चलाने की अनुमति न दे जैसा भी आगे की स्थिति में मामला हो। क्या पार्टी लागत लगाने के आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख पर लागत का भुगतान करने में विफल रही है

(8) सही उत्तर पाने के लिए यह देखना होगा कि इस प्रावधान को लागू करने में विधायिका की मंशा क्या थी। इसमें कोई दोराय नहीं हो सकती क्योंकि यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव है कि केवल 'क्या' शब्द के उपयोग से कोई वैधानिक प्रावधान अनिवार्य नहीं हो जाएगा और धारा के वास्तविक चरित्र का निर्धारण करने के लिए न्यायालय को इरादे का पता लगाना होगा। संपूर्ण क़ानून के दायरे पर सावधानी पूर्वक

विचार करके विधायिका का दूसरे शब्दों में किसी अनुभाग में 'करेगा' शब्द का उपयोग आवश्यक रूप से इसे अनिवार्य नहीं बनाता है।

(9) निर्णय के पहले भाग में मैंने इस प्रावधान के अधिनियम के उद्देश्य का विवरण दिया है। विधायिका की मंशा जानने के लिए प्रावधान का विश्लेषण ही काफी मददगार साबित होगा। अनुभाग को मात्र पढ़ने से यह पता चलता है। पीड़ित पक्ष को लागत का भुगतान करना न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया है जैसा कि धारा में 'हो सकता है' शब्द के उपयोग से स्पष्ट है लेकिन एक बार विवेक का प्रयोग किया गया है और अगले पर लागत का भुगतान नहीं किया गया है सुनवाई की तारीख फिर परिणामी कार्रवाई करने के संबंध में 'करेगा' शब्द का इस्तेमाल किया गया है।

(10) प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री गोयल द्वारा यह तर्क दिया गया कि यद्यपि धारा में 'करेगा' शब्द का उपयोग किया गया है लेकिन उस शब्द के उपयोग कर्ता द्वारा लागत का भुगतान करने के लिए अधिक समय देने की न्यायालय की शक्ति को छीना नहीं गया. मुझे डर है कि मैं प्रतिवादी के विद्वान वकील के तर्क से सहमत नहीं हो पा रहा हूं। श्री गोयल के तर्क में कुछ दम हो सकता था यदि 'होगा' शब्द का अकेले उपयोग किया गया होता क्योंकि उस स्थिति में इस प्रस्ताव के लिए निर्णय दिए गए थे कि केवल 'करेगा' शब्द का उपयोग किसी क़ानून को अनिवार्य नहीं बना सकता है कुछ के हो गए हैं

प्रासंगिकता। लेकिन मौजूदा मामले में, धारा 35-बी के प्रावधानों की एक मात्र जांच से पता चलेगा कि विधानमंडल ने अपना इरादा बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है और किसी भी संदेह से परे है, कि प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य हैं और किसी भी गैर-अनुपालन इसके साथ ही उसमें परिकल्पित दंडात्मक परिणाम भी होंगे। जब धारा 35-बी के प्रावधानों का विश्लेषण किया जाता है तो हम पाते हैं कि विधानमंडल केवल 'होगा' शब्द का उपयोग करके संतुष्ट नहीं था और धारा में यह 'करेगा' शब्द 'शर्त मिसाल' शब्दों से योग्य है। जहां कोई क़ानून घोषित करता है कि किसी विशेष चीज़ को करना एक पूर्ववर्ती शर्त होगी तो स्पष्ट रूप से इरादा इसे एक प्रारंभिक आदेश बनाने का है। एक शर्त मिसाल एक शर्त है जिसे पूरा किया जाना चाहिए। यदि विधायिका का इरादा धारा के प्रावधानों को अनिवार्य बनाने का नहीं था, तो विधायिका के लिए

यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था कि वह 'शर्त मिसाल' शब्दों का उपयोग करके 'करेगा' शब्द को योग्य बनाती। विधायिका ने 'एक शर्त मिसाल होगी' शब्दों का उपयोग करके अपना इरादा बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि इस धारा के प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य हैं और इन प्रावधानों का कोई भी गैर-अनुपालन घातक होगा। मेरे लिए, 'शर्त मिसाल' शब्द जो 'होगा' शब्द को योग्य बनाता है, धारा 35-बी के प्रावधानों को अनिवार्य के रूप में व्याख्या करने के लिए निर्णायक प्रतीत होता है। जैसा कि पहले देखा गया है, लागत का भुगतान दूसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति करने के लिए करने का आदेश दिया जाता है, जिसे बिना किसी गलती के असुविधा से गुजरना पड़ता है और खर्च उठाना पड़ता है। यदि स्थगन की मांग की जाती है और वह लागत के भुगतान पर दी जाती है, तो सुनवाई की अगली तारीख पर स्थगन की मांग करने वाला पक्ष लागत का भुगतान करने के लिए बाध्य है। मेरे विचार में, धारा की स्पष्ट भाषा में, न्यायालय को केवल यह देखना है कि लागत का भुगतान किया गया है या नहीं और यदि कोई पक्ष लागत का भुगतान नहीं करता है, तो न्यायालय के पास एकमात्र रास्ता अभियोजन को अस्वीकार करना है। आगे मुकदमे या बचाव का। न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा कि क्या स्थगन की मांग करने वाला पक्ष मुकदमे में देरी करने का दोषी है या नहीं, या पक्ष के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना उपयोगी नहीं था या स्थगन की मांग अनावश्यक थी। जब कोई पक्ष स्थगन चाहता है, तो उसे अपनी मूर्खता या गलती की कीमत चुकानी पड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्ष को असुविधा और अनावश्यक उत्पीड़न होता है। वह परोपकार के कार्य के रूप में ऐसा नहीं करता है। इसके अलावा, एक वादी से पूरा सम्मान दिखाने की अपेक्षा की जाती है न्यायालय के आदेश पर. उन्हें उनकी अनदेखी करने की इजाजत नहीं दी जा सकती.' या दण्डमुक्ति के साथ उनका उल्लंघन करें। यदि वह आदेशों की अवहेलना करने का विकल्प चुनता है अदालत का और खर्च का भुगतान करने में विफल रहता है, तो उसे दंड भुगतना होगा

एल.एल.आर. पंजाब और हरियाणा (1981)2

लागत का भुगतान करने का कर्तव्य उस पक्ष पर है जिसे लागत का भुगतान करने का आदेश दिया गया है। न्यायालय या जिस पक्ष को लागत प्राप्त करनी है, वह दोषी पक्ष को अपना कर्तव्य निभाने के लिए याद दिलाने के लिए बाध्य नहीं है। यदि इसे निर्देशिका के रूप में माना जाता है तो इस प्रावधान को लागू करने का पूरा उद्देश्य विफल हो जाएगा। यह फिर से हो सकता है इस बात पर जोर दिया गया कि न्यायालयों को यह पता लगाने की आवश्यकता नहीं

है कि स्थगन प्राप्त करने में पक्ष का इरादा क्या था क्योंकि जिस समय किसी मुकदमे की सुनवाई के लिए या उसमें कोई कदम उठाने के लिए तारीख तय की जाती है, उसी समय स्थगन प्राप्त किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप मुकदमे के निर्णय में देरी होती है। इस प्रावधान की प्रयोज्यता को आकर्षित करने के लिए आवश्यक आवश्यकताओं में से एक यह है कि तारीख वह होनी चाहिए जब कोई मुकदमा सुनवाई के लिए या उसमें कोई कदम उठाने के लिए तय किया गया हो। यदि तारीख केवल के लिए है प्रक्रिया शुल्क जमा करना या ऐसा कोई कार्य करना; तो यह नहीं कहा जा सकता कि मुकदमा सुनवाई के लिए या उसमें कोई कदम उठाने के लिए तय किया गया था। जब एक बार (धारा के तत्व साबित हो जाते हैं, तो कोई अन्य अनावश्यक विचार नहीं) न्यायालयों द्वारा ध्यान में रखा जाएगा।

(11) इस स्तर पर, मैं संहिता की धारा 35-बी की उप-धारा (2) के प्रावधानों का भी उल्लेख कर सकता हूं, जो अलग से होने वाले आदेश के आधार पर लागत की राशि की स्वतंत्र रूप से वसूली का प्रावधान करता है। खींचा। इस प्रावधान से फिर, मुझे उस दृष्टिकोण का समर्थन मिलता है जो मैंने ऊपर लिया है। विधानमंडल केवल मुकदमे या बचाव पक्ष, जैसा भी मामला हो, के अभियोजन पर रोक लगाने से संतुष्ट नहीं था, बल्कि अलग-अलग आदेश के आधार पर स्वतंत्र रूप से लागत की राशि की वसूली के लिए भी प्रावधान किया गया था। उस उद्देश्य के लिए तैयार किया गया। यह प्रावधान, मेरे विचार में, यह भी दर्शाता है कि विधानमंडल द्वारा लागत के आदेश को कितना पवित्र और बाध्यकारी माना जाता है।

(12) इसके अलावा, जैसा कि मेरे विद्वान भाई के फैसले से स्पष्ट है, धारा 35-बी के लागू होने से पहले भी, कानून जैसा पहले था, वह यह था कि जब लागत के भुगतान पर स्थगन दिया गया था तब भी निपटान के संबंध में कार्रवाई की गई थी मुक़दमे का निपटारा करना या लागतों का भुगतान न करने की स्थिति में बचाव को समाप्त करना उचित नहीं माना गया, जब तक कि लागतों का पुरस्कार देना स्थगन अनुदान के लिए एक शर्त नहीं बना दिया गया था। यदि यह हो तो कानून की वह स्थिति थी जिसकी व्याख्या न्यायालय पहले करते थे और अब करते हैं धारा 35-बी को अधिनियमित करके विधायिका ने और कुछ नहीं किया है क़ानून में उस क़ानून को स्पष्ट रूप से शामिल किया गया।

(13) हालाँकि, यह स्पष्ट किया जा सकता है कि यदि लागत का भुगतान न करने का कार्य जानबूझकर नहीं है और न्यायालय के आदेश की अवहेलना करने का जानबूझकर किया गया प्रयास है, तो न्यायालय अपराधी पर अत्यधिक जुर्माना नहीं लगा सकता है। . मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि किसी पक्ष को उसके नियंत्रण से परे कारणों से लागत का भुगतान करने से रोका जाता है और भुगतान करने के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया जाता है, तो न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है और अधिक समय दे सकता है। लागत का भुगतान करने में देरी करने पर और धारा में दिए गए अनुसार अत्यधिक जुर्माना उस तिथि पर नहीं लगाया जा सकता है जिस दिन लागत का भुगतान किया जाना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 35-बी के तहत पारित आदेश प्रक्रियात्मक हैं, हालांकि विधानमंडल की मंशा को देखते हुए वे अनुवर्ती प्रकृति के हैं। इस तरह के आदेश मूल रूप से आतंकवाद में हैं ताकि बेईमान वादी विलंबकारी रणनीति में शामिल न हो सकें। हालाँकि, वे किसी न्यायालय को भुगतान किए जाने से पहले हुई घटनाओं और परिस्थितियों पर ध्यान देने से पूरी तरह से नहीं रोकते हैं।

(14) ऐसे मामले कम नहीं हो रहे हैं जिनमें न्यायालयों ने ऐसी स्थिति से निपटने के लिए अपने व्यवहार को ढाला है जिस पर किसी पक्ष का कोई नियंत्रण नहीं है और उस उद्देश्य के लिए, न्यायालय के पास संहिता की धारा 148 के तहत पर्याप्त शक्ति है जो इस प्रकार है: -

> "जहां इस संहिता द्वारा निर्धारित या अनुमत किसी कार्य को करने के लिए न्यायालय द्वारा कोई अवधि तय की जाती है या दी जाती है, तो न्यायालय समय-समय पर अपने विवेक से ऐसी अवधि बढ़ा सकता है, भले ही मूल रूप से निर्धारित या दी गई अवधि समाप्त हो गई हो ।"

उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप मेरा मानना है कि यदि पक्ष लागत लगाने के आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख पर लागत का भुगतान करने में विफल रहता है तो अदालत के लिए यह अनिवार्य है कि वह मुकदमे के अभियोजन की अनुमति न दे। जैसा भी मामला हो, बचाव करना होगा और अपराधी पक्ष के खिलाफ अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में न्यायालय के सामने कोई अन्य अनावश्यक विचार आड़े नहीं आएगा। हालाँकि ऐसे मामलों में जहां चूककर्ता पक्ष के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के परिणामस्वरूप लागत का भुगतान नहीं किया जाता है, तो न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर चूककर्ता के पक्ष में संहिता की धारा 148 के तहत

अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा। यदि ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए कोई मजबूत मामला बनता है।

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

(15) उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री सी.बी. गोयल के प्रति पूरी निष्पक्षता से मैं श्रीमती हकमी और अन्य बनाम पीतांबर और अन्य (2) मानक चंद बनाम सुरेश चंद जैन (3) और निक्का सिंह और अन्य बनाम पूरन सिंह और अन्य (4) मामले में इस न्यायालय के तीन एकल पीठ के फैसलों का उल्लेख कर सकता हूं। जिस पर हमारा ध्यान विद्वान वकील ने अपने तर्क के समर्थन में और मंजीत सिंह बनाम भारतीय स्टेट बैंक (सुप्रा) में डिवीजन बेंच मामले की ओर आकर्षित किया था जो बेंच के संज्ञान में आया था। जैसा कि मेरे निष्कर्षों से पता चलता है मैं इन मामलों से व्यक्तिगत रूप से निपटने का प्रस्ताव नहीं रखता। कानूनी प्रश्न पर सम्मान के साथ मैं उन सभी मामलों में अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हूं और उन्हें खारिज करता हूँ।

(16) कानूनी मुद्दे का उत्तर देने के बाद अब मैं मामले के मौजूदा तथ्यों पर ध्यान केंद्रित करता हूं चूंकि इसमें शामिल बिंदु बहुत छोटा है इसलिए मामले को गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए डिवीजन बेंच को वापस भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

(17) मामले के स्वीकृत तथ्य यह हैं कि उस आवेदन पर साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए स्थगन की मांग की गई थी जो इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया था कि श्रीमती के रूप में धन्वंतरी देवी प्रतिवादी संख्या 2 की मृत्यु हो गई थी इसलिये मुकदमा समाप्त हो गया था। आवेदन का विरोध किया गया। श्रीमती धन्वंतरि देवी की मृत्यु की तारीख के रूप में विवादित पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई। प्रतिवादियों ने कुछ सबूत पेश किए और बाकी सबूतों के लिए मामले को 23 अगस्त, 1978 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस तारीख को सबूत पेश नहीं किए गए और इस आधार पर स्थगन की मांग की गई कि वकील स्टेशन से बाहर गए थे। स्थगन लागत के रूप में 35 रुपये के भुगतान पर दिया गया था। और मामले को पक्षों के साक्ष्य के लिए 30 अगस्त, 1978 तक के लिए स्थगित कर दिया गया जिस तारीख को लागत का भुगतान करने और सबूत पेश करने के बजाय प्रतिवादियों के वकील ने बयान दिया कि

वह भुगतान नहीं करना चाहते थे। लागत क्योंकि उसे कोई सबूत पेश नहीं करना पड़ा। इस बयान के मद्देनजर, संहिता की धारा 35-बी के तहत एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें प्रार्थना की गई थी कि प्रतिवादियों को बचाव पक्ष में आगे मुकदमा चलाने से रोका जाए। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आवेदन को केवल उस सीमा तक अनुमति दी जहां तक आवेदन पर मुकदमा चलाने पर रोक लगा दी गई थी। इस पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से ट्रायल कोर्ट के आदेश को चुनौती दी गई है

(2) 1978 पी.एल.आर. 256.

(3) 1979 पी.एल.जे. 332.

(4) 1979 पी.एल.जे. 535.

आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राय एवं अन्य (पी. सी. जैन, जे.)

(18) इसमें कोई दो राय नहीं है कि आवेदन पर साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए स्थगन की मांग की गई थी जो मुकदमे में उठाया गया एक कदम था। विद्वान उप-न्यायाधीश ने केवल आवेदन पर मुकदमा चलाने की अनुमति देने में गैरकानूनी और भौतिक अनियमितता के साथ काम किया। लागत का भुगतान करने से इनकार करने का प्रतिवादियों का कृत्य अपमानजनक था। स्वीकृत तथ्यों पर सीधे तौर पर प्रतिवादियों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने का मामला बनाया गया था। ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादियों को केवल आवेदन पर मुकदमा चलाने से रोकने में अवैध रूप से और भौतिक अनियमितता के साथ काम किया। ट्रायल कोर्ट का विवादित आदेश कानूनी रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता।

(19) नतीजतन मैं इस पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करता हूं ट्रायल कोर्ट के 6 सितंबर 1978 के आदेश को रद्द करता हूं और मानता हूं कि चूंकि प्रतिवादियों द्वारा लागत का भुगतान नहीं किया गया था इसलिए उन्हें अपने बचाव में आगे मुकदमा चलाने से रोक दिया गया है। मामले की परिस्थितियों में मैं एम. आर. शर्मा, जे, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देता। पक्षों को अपने वकील के माध्यम से 20 जुलाई, 1981 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

(20) मामले के तथ्य मेरे विद्वान भाई पी. सी. जैन, जे द्वारा तैयार किए गए विस्तृत संदर्भ क्रम में दिए गए हैं और मुझे उन्हें दोबारा दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इस पूर्ण पीठ को जिस संक्षिप्त प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए बुलाया गया है वह यह है कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित) की धारा 35-बी के प्रावधान अनिवार्य हैं, और यदि हां, तो किस हद तक।

21. संहिता में शामिल विस्तृत प्रावधानों के बावजूद ट्रायल कोर्ट के समक्ष लंबित सिविल मामलों का निपटारा उतनी तेजी से नहीं किया जा रहा है जितना वांछनीय है। बेशक इन देरी के कई कारण हैं जिनका विवरण यहां देने की जरूरत नहीं है। यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि इस मामले पर कानून आयोग का ध्यान गया, जिसने मामले की विस्तृत जांच की और अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को इस सिफारिश के साथ सौंपी कि नागरिक प्रक्रिया संहिता 1908 को पूरी तरह से संशोधित किया जाए और फिर से लागू किया जाए। - अभिनीत। उक्त रिपोर्ट में एक 'सिफारिश' थी कि संहिता में एक नया खंड, अर्थात् धारा 35-बी जोड़ा जाए ताकि उसके प्रतिद्वंद्वी द्वारा मुकदमे के अभियोजन में देरी के लिए पीड़ित पक्ष को दी जाने वाली लागत का प्रावधान किया जा सके। प्राप्त सुझावों के फलस्वरूप आयोग द्वारा किये गये विचार-विमर्श इसके द्वारा स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है कि प्रासंगिक भाग इस अनुभाग से संबंधित रिपोर्ट इस प्रकार है:-

"धारा 35-बी (नई) (पार्टी द्वारा की गई देरी के लिए लागत) 1-दि.83. अक्सर ऐसा होता है कि 'पार्टी सफल होते हुए भी यह आयोजन, सम्मान में अनुचित देरी के लिए जिम्मेदार है

आई .एल.आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

यह उचित है कि मुकदमेबाजी के विशेष चरणों की लागत प्रदान करते समय इस तरह की देरी को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस विषय पर राय जानने के लिए हमने प्रश्नावली में एक प्रश्न इस प्रकार रखा था:-

"1. क्या आप इस आशय का प्रावधान शामिल करने के पक्ष में हैं कि अदालत लागत के लिए आदेश पारित करते समय, मुकदमेबाजी में किसी भी कदम के संदर्भ में

देरी के लिए पार्टी को जिम्मेदार बनाएगी उस देरी के अनुपात में लागत का भुगतान करेगी मुकदमे की अंतिम घटना कुछ भी हो।"

1-दि.84. इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया है प्राप्त उत्तरों को तीन व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात्, (i) जो सुझाए गए संशोधन का समर्थन करते हैं, (ii) जो इसका विरोध करते हैं, और (iii) जो इसे संशोधित रूप में स्वीकार करते हैं उदाहरण के लिए जो एक अनिवार्य प्रावधान डालने के बजाय मामले को अदालत के विवेक पर छोड़ देंगे।

1-डी.85. पहली दो श्रेणियों के बीच राय लगभग समान रूप से विभाजित है, केवल कुछ उत्तर संशोधन के साथ संशोधन के पक्ष में हैं। जो लोग प्रश्न में पोस्ट किए गए संशोधन के पक्ष में हैं वे टाल-मटोल की रणनीति पर अंकुश लगाने के लिए इसे वांछनीय मानते हैं। यह कहा गया है कि विलायक पक्ष अक्सर विपरीत पक्ष को पंगु बनाने के लिए टालमटोल की रणनीति का सहारा लेते हैं या खराब मामले वाला पक्ष मामले में देरी करने की कोशिश करता है। आगे यह बताया गया है कि मुकदमेबाजी का एक अच्छा हिस्सा उस राहत में देरी करना है जिसके लिए विपरीत पक्ष हकदार है। उत्तरों में से एक में कहा गया है कि स्थगन की लागत का भुगतान मुकदमेबाजी में अगला कदम उठाने से पहले की शर्त बनाई जानी चाहिए यानी वह कदम जिसके लिए उस पक्ष को स्थगन दिया गया है जिसके खिलाफ स्थगन दिया गया है। लागत प्रदान की जाती है।

1.डी.86. जो उत्तर सुझाए गए प्रावधान का विरोध करते हैं वे विभिन्न आधारों पर अपना विरोध करते हैं उदाहरण के लिए यह कहा गया है कि ऐसा प्रावधान अव्यवहारिक होगा और भ्रम पैदा करेगा और यह आकलन करने में बहुत समय व्यतीत होगा कि कौन जिम्मेदार था एक के लिए

विशेष विलंब यह भी कहा गया है कि चूंकि स्थगन न्यायिक आदेश द्वारा दिए जाते हैं, इसलिए विचाराधीन प्रकृति का अनिवार्य प्रावधान बनाना सही नहीं होगा। उत्तरों में से एक में यह भी कहा गया है कि अदालत के पास अब भी देरी होने पर जुर्माना देने की शक्ति है तुच्छ आवेदन के कारण या जानबूझकर की गई चूक के कारण अथवा कार्यवाही

के अभियोजन में लापरवाही। अंतत यह सुझाव दिया गया है कि ऐसे प्रावधान से कम नहीं होगा। ऐसा कहा गया है कि न्यायालय मैं देरी आवेदनों समय पर ना करने के कारण होती है और हलफनामा दायर करने के लिए स्थगन या आवेदन इन अनुप्रयोगों को अलग से प्रावधान बनाकर निपटाया जाता है.

1-दि.87. कुछ उत्तर संशोधित संशोधन के पक्ष में हैं जो न्यायालय का ध्यान इस ओर आकर्षित करेगा इस पहलू पर विचार करने की जरूरत है मामला न्यायालय का विवेक पर छोड़ दें।

1-दि.88. उच्च न्यायालयों से उपरोक्त सामान्य प्राप्त उत्तर मैं मतभेद परिलक्षित होता है । इस प्रकार, कुछ उच्च न्यायालय सुझाए गए संशोधन के पक्ष में हैं, कुछ इसका विरोध करते हैं जबकि कुछ उच्च न्यायालयों में, उस पर व्यक्तिगत उच्च न्यायालय न्यायाधीशों के बीच मतभेद एक है ।

1-डी.89. हमने राय पर विचार व्यक्त किया है. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जब यह कठोर प्रावधान रखना बुद्धिमानी नहीं होगी, यह न्यायालय को निर्णय लेने का विवेक देना उपयोगी है ऐसी देरी का हिसाब दें. इसकी कम से कम उपयोगिता तो होनी चाहिए इस पहलू पर ध्यान केन्द्रित करने की ।

सिफारिश:

1-दि.90. तदनुसार हम अनुशंसा करते हैं कि निम्नलिखित अनुभाग संहिता में डाला जाना चाहिए

"35-बी. न्यायालय, लागत के लिए आदेश पारित करते समय, कर सकता है किसी भी संदर्भ में देरी के लिए जिम्मेदार पक्ष मुकदमे में कदम रखें, आनुपातिक लागत का भुगतान करें.

वह देरी, मुकदमे की अंतिम घटना जो भी हो।"

हालाँकि विधायी प्रक्रिया के बाद अनुभाग निम्नलिखित रूप में सामने आया:-

"35-बी. देरी पैदा करने की लागत.-

(1) यदि किसी मुकदमे की सुनवाई के लिए या उसमें कोई कदम उठाने के लिए निर्धारित किसी तारीख पर मुकदमे का एक पक्ष-

(ए) उस तारीख को वह कदम उठाने में विफल रहता है जो उसे इस संहिता के तहत या इसके तहत उठाने की आवश्यकता थी, या

(बी) ऐसा कदम उठाने के लिए या सबूत पेश करने के लिए या किसी अन्य आधार पर स्थगन प्राप्त करता है, न्यायालय, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, एक आदेश दे सकता है, जिससे ऐसी पार्टी को अन्य पार्टी को ऐसी लागत का भुगतान करने की आवश्यकता होगी, जैसा कि उसकी राय में होगा न्यायालय का, उस तिथि पर न्यायालय में उपस्थित होने में उसके द्वारा किए गए खर्चों के संबंध में दूसरे पक्ष की प्रतिपूर्ति करने के लिए उचित रूप से पर्याप्त होना चाहिए, और ऐसे आदेश की तारीख के बाद अगली तारीख पर ऐसी लागतों का भुगतान, एक मिसाल होगी आगे के अभियोजन के लिए-

(ए) वादी द्वारा मुकदमा, जहां वादी को ऐसी लागत का भुगतान करने का आदेश दिया गया था।

(बी) प्रतिवादी द्वारा बचाव, जहां 'प्रतिवादी को ऐसी लागत का भुगतान करने का आदेश दिया गया था।

स्पष्टीकरण- जहां प्रतिवादियों या प्रतिवादियों के समूहों द्वारा अलग-अलग बचाव किए गए हैं, ऐसी लागतों का भुगतान ऐसे प्रतिवादियों या प्रतिवादियों के समूहों द्वारा बचाव के आगे अभियोजन के लिए एक शर्त होगी, जिन्हें न्यायालय द्वारा ऐसी लागतों का भुगतान करने का आदेश दिया गया है।

(2) उप-धारा (1) के तहत भुगतान की जाने वाली लागत यदि भुगतान की जाती है, तो मुकदमे में पारित डिक्री में दी गई लागत में शामिल नहीं की जाएगी, लेकिन, यदि ऐसी लागत का भुगतान नहीं किया जाता है, तो एक अलग

> ऐसी लागतों की राशि और उन व्यक्तियों के नाम और पते दर्शाते हुए आदेश तैयार किया जाएगा जिनके द्वारा ऐसी लागतें देय हैं और इस प्रकार तैयार किया गया आदेश ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध निष्पादन योग्य होगा।"

इस धारा को पढ़ने से पता चलता है कि धारा में "हो सकता है" शब्द के इस्तेमाल से पीड़ित पक्ष को लागत का भुगतान अदालत के विवेक पर छोड़ दिया गया है, लेकिन अदालत द्वारा की जाने वाली परिणामी कार्रवाई के संबंध में सुनवाई की अगली तारीख पर जब लागत का भुगतान नहीं किया जाता है तो "करेगा" शब्द का प्रयोग किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री जैन ने जोरदार तर्क दिया है कि "एक शर्त मिसाल होगी" शब्दों के उपयोग के कारण, इस धारा को चरित्र में अनिवार्य माना जाना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया कि संहिता की धारा 35बी की उप-धारा (2) में प्रयुक्त शब्द भी इस निष्कर्ष का समर्थन करते हैं, क्योंकि स्थगन की लागत को डीरी में दी गई लागतों में शामिल नहीं किया जाना है, क्योंकि ऐसी लागतें निम्नलिखित का पालन करती हैं। आयोजन। दूसरी ओर, ऐसी लागतों की राशि का संकेत देते हुए एक अलग आदेश तैयार करना होगा ताकि पीड़ित पक्ष मुकदमे के परिणाम की परवाह किए बिना उन्हें महसूस कर सके।

22. क्या "करेगा" शब्द का उपयोग आवश्यक रूप से एक वैधानिक प्रावधान को अनिवार्य बनाता है या नहीं, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम बाबू राम उपाध्याय, (5) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया, जिसमें न्यायालय ने आयोजित:-

> ".....विधायिका के वास्तविक इरादे को सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय अन्य बातों के अलावा, क़ानून की प्रकृति और डिज़ाइन, और इसे एक या दूसरे तरीके से समझने से होने वाले परिणामों, अन्य प्रावधानों के प्रभाव, जिसके अनुपालन की आवश्यकता पर विचार कर सकता है। विचाराधीन प्रावधानों से बचा जाता है, परिस्थिति, अर्थात्, क़ानून प्रावधानों के गैर-अनुपालन की आकस्मिकता का प्रावधान करता है, तथ्य यह है कि प्रावधानों का अनुपालन न करने पर कुछ जुर्माना लगाया जाता है या नहीं दिया जाता है, गंभीर या तुच्छ.

(5) एआईआर 1961 एस.सी. 751।

आई.एल.आर. पंजाब और हरियाणा.
(1981)2

इससे उत्पन्न होने वाले परिणाम, और, सबसे ऊपर, क्या कानून का उद्देश्य विफल हो जाएगा या आगे बढ़ जाएगा।"

इस बात पर ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं है कि भले ही "करेगा" शब्द का प्रयोग किसी क़ानून के किसी विशेष खंड में किया गया है, फिर भी धारा के वास्तविक चरित्र को निर्धारित करने के लिए, न्यायालय को सावधानीपूर्वक विचार करके विधायिका के इरादे को सुनिश्चित करना होगा। संपूर्ण क़ानून का दायरा. दूसरे शब्दों में, किसी अनुभाग में "करेगा" शब्द का उपयोग इसे अनिवार्य नहीं बनाता है।

(23) बाबू राम उपाध्याय के मामले (सुप्रा) में निर्धारित नियम सामान्य अनुप्रयोग का है, लेकिन कई मामलों में नागरिक प्रक्रिया संहिता के कुछ प्रावधानों की व्याख्या करते समय भी, जहां "करेगा" शब्द का उपयोग किया गया था, न्यायालयों ने माना गया कि ऐसे प्रावधान निर्देशिका प्रकृति के थे।

(24) मेसर्स बब्बर सिलाई मशीन कंपनी बनाम तिरलोक नाथ महाजन, (6), मैं उच्चतम न्यायलय के पास पुराने कोड के आदेश 11 नियम 21 पर विचार करने का अवसर था, जो इस प्रकार है:-

"जहां कोई भी पक्ष पूछताछ का जवाब देने या दस्तावेजों की खोज या निरीक्षण के लिए किसी भी आदेश का पालन करने में विफल रहता है, तो वह, यदि वादी है, अभियोजन के अभाव में अपना मुकदमा खारिज करने के लिए उत्तरदायी होगा, और, यदि प्रतिवादी है, तो उसे अपना बचाव करना होगा यदि कोई हो, तो उसे हटा दिया जाएगा, और उसे उसी स्थिति में रखा जाएगा जैसे कि उसने बचाव नहीं किया हो, और पूछताछ करने या खोज या निरीक्षण की मांग करने वाला पक्ष इस आशय के आदेश के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकता है, और एक आदेश हो सकता है तदनुसार बनाया गया।"

इस बिंदु पर केस कानून की विस्तृत चर्चा करने के बाद, न्यायालय ने कहा-

"अधिनियम 11 के आदेश 21 के तहत अदालत के अपने विवेक के प्रयोग को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत, जैसा कि हमने पहले ही कहा है, यह केवल तब होता है जब चूक जानबूझकर की जाती है और अंतिम उपाय के रूप में अदालत को मुकदमा खारिज कर देना चाहिए या बचाव को खारिज कर देना चाहिए, जब पार्टी इस तरह के अपमानजनक आचरण का दोषी है या अदालत के आदेश की अवहेलना करने का जानबूझकर प्रयास किया गया है कि मुकदमे की सुनवाई को रोक दिया गया है।"

(6) एआईआर 1978 एस.सी., 1438।

आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राय और अन्य (एम. आर. शर्मा, जे.)

मैं इस स्थान पर यह भी जोड़ सकता हूं कि आदेश 11 नियम 21 के तहत जारी किए गए न्यायालय के आदेश का अनुपालन न करने के परिणाम बिल्कुल वही होंगे जो वर्तमान संहिता की धारा 35 बी द्वारा परिकल्पित हैं, जो विचाराधीन है। इस स्थिति में, मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "अपमानजनकता" का सिद्धांत क्यों प्रतिपादित किया गया इस खंड में भूमि का आयात भी नहीं किया जाएगा।

5. एक और मिसाल जो कुछ मददगार हो सकती है वह है अमृतसर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम श्रीमती इशरी देवी, (7), जिसमें पूर्ण पीठ को संहिता के आदेश 18 नियम 3ए पर विचार करने के लिए बुलाया गया था, जिसने संहिता के पहले प्रावधानों से भी विचलन कर दिया था। यह प्रावधान इस प्रकार है-

"जहां कोई पक्ष स्वयं गवाह के रूप में उपस्थित होना चाहता है, उसे अपनी ओर से जांच किए गए किसी अन्य गवाह के समक्ष उपस्थित होना होगा, जब तक कि न्यायालय, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, उसे अपने एक गवाह के रूप में उपस्थित होने की अनुमति न दे दे।"

बाद की स्थिति "करेंगे" शब्द के प्रयोग के बावजूद पूर्ण पीठ ने माना कि प्रावधान का स्वरूप निर्देशिका जैसा था बेंच के लिए बोलते हुए, संधावालिया, सी.जे. ने कहा:-

"9. निर्माण के उपरोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए प्रक्रियात्मक कानूनों को ध्यान में रखते हुए अब हम नियम 3-ए की भाषा पर वापस जा सकते हैं। इसके एक

मात्र संदर्भ से यह स्पष्ट हो जाएगा कि विधानमंडल ने निस्संदेह यह नियम निर्धारित किया है कि अपने स्वयं के गवाह के रूप में उपस्थित होने वाले पक्ष को अपनी ओर से किसी अन्य गवाह से पूछताछ करने से पहले उपस्थित होना होगा। हालाँकि, समान रूप से स्पष्ट शब्दों में उक्त नियम का एक अपवाद भी विधानमंडल द्वारा ही प्रदान किया गया है। इसका मतलब यह है कि न्यायालय की अनुमति से किसी पक्ष को पर्याप्त कारण के लिए उसके एक या सभी गवाहों की जांच के बाद भी मंच पर उपस्थित होने की अनुमति दी जा सकती है। इसलिए, इस बात पर प्रकाश डाला जाना चाहिए कि किसी पक्ष को पहले गवाह-बॉक्स में जाने की आवश्यकता वाला नियम लचीला नहीं है और न्यायालय की अनुमति से इसमें ढील दी जा सकती है। क्या

(7) 1979 आर.एल.आर. 307,

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

हालाँकि, यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि क़ानून की भाषा किसी भी तरह से उस सटीक समय को निर्धारित नहीं करती है जिस पर बाद में उपस्थित होने की अनुमति सुरक्षित की जानी है। इसमें यह नहीं कहा गया है कि किसी भी गवाह से उसकी ओर से पूछताछ करने से पहले यह आवश्यक रूप से पहली बार होना चाहिए। इसलिए, कोई कह सकता है कि क़ानून उस चरण के बारे में चुप है जिस पर अनुमति सुरक्षित की जानी है। न ही यह कहा जा सकता है कि आवश्यक मंशा से विधानमंडल ने यह निर्धारित किया है कि उक्त अनुमति साक्ष्य की शुरुआत में ही मांगी जानी चाहिए, बाद में नहीं। वास्तव में, जब मोटे तौर पर समझा जाता है, तो विधायिका का इरादा यह प्रतीत होता है कि अब निर्धारित सामान्य और सामान्य नियम यह है कि पार्टी अपनी पार्टी के रूप में दिखाई दे। गवाहों को ऐसा अपने किसी गवाह के समक्ष करना चाहिए। हालाँकि, नियम लचीला या पवित्र नहीं है और पर्याप्त कारणों के आधार पर न्यायालय की अनुमति से इसे स्पष्ट रूप से हटाया जा सकता है। कोई विशेष नहीं. ऐसी अनुमति प्राप्त करने के लिए क़ानून द्वारा चरण निर्धारित या तय किया जा रहा है, एक पक्ष शायद अपने साक्ष्य शुरू करने के चरण में अत्यधिक सावधानी बरत सकता है और आवश्यक अनुमति प्राप्त कर सकता है

और समान रूप से, यदि पर्याप्त आधार बनाया गया है, तो वह बाद के चरण में इसे सुरक्षित किया जा सकता है।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने में विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने इन शब्दों पर ध्यान दिया "जब तक कि अदालत, दर्ज किए जाने वाले कारणों से उसे बाद के चरण में अपने गवाह के रूप में पेश होने की अनुमति नहीं देती" लेकिन इनका अभाव विचाराधीन अनुभाग में शब्दों से शायद ही कोई महत्वपूर्ण अंतर पड़ता है। धारा 35-बी के खंड (बी) में प्रावधान है कि न्यायालय दर्ज किए जाने वाले कारणों से एक आदेश दे सकता है जिसमें किसी पक्ष को लागत का भुगतान करने की आवश्यकता होगी। इसका तात्पर्य यह है कि यह प्रश्न कि क्या स्थगन लागत के भुगतान पर दिया जाना चाहिए या लागत के बिना दिया जाना चाहिए और यदि यह लागत के भुगतान पर दिया जाता है तो उनकी मात्रा न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी जाती है। कानून की एकमात्र आवश्यकता यह है कि यदि लागतें प्रदान की जाती हैं तो उन्हें उस दिन अदालत में उपस्थित होने पर विपरीत पक्ष द्वारा किए गए खर्चों के अनुरूप होना चाहिए। जिस न्यायालय के पास विवेकाधीन आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार है उसके पास किसी पक्ष को होने वाली कठिनाई को पूरा करने के लिए इसे संशोधित करने की शक्ति भी है। क़ानून में यह नहीं कहा गया है कि यदि लागत का भुगतान नहीं किया जाता है तो बर्खास्तगी का स्वत: प्रभाव होगा

(आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राल और अन्य (एम. आर. शर्मा, जे.)

वादी का मुक़दमा या प्रतिवादी का बचाव ख़त्म करना। उस उद्देश्य के लिए भी न्यायालय को एक आदेश पारित करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, उपरोक्त मामले को आगे बढ़ाने की अनुमति देने के लिए अदालत से प्रार्थना करने के उसके अधिकार के विपरीत मामले को आगे बढ़ाने का पार्टी का अधिकार छीन लिया गया है।

(25) जो पक्ष लागत का भुगतान करने से इनकार करता है वह निश्चित रूप से न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन नहीं करता है लेकिन यदि न्यायालय स्वयं इस चूक को माफ कर देता है या किसी पक्ष को अगली तारीख पर आदेश का पालन करने की अनुमति देता है तो यह यह नहीं कहा जा सकता कि संबंधित पक्ष ने न्यायालय के आदेश का उल्लंघन किया है। इस संदर्भ में विधि आयोग के समक्ष उठाया गया विवाद कुछ महत्व रखता है। मैं एक पल के

लिए भी यह सुझाव नहीं दे रहा हूं कि इसके समक्ष व्यक्त किए गए विचार या इसके द्वारा सरकार को की गई अंतिम सिफारिश अदालत के लिए बाध्यकारी है। मैं बस इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि यह रिपोर्ट उन लोगों के दिमाग की कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी देती है जिन्होंने विधायिका को सिफारिश की थी। भाग संख्या 1-डी, '89 में निकाला गया। ऊपर, आयोग का स्वयं मानना था कि कठोर प्रावधान बनाना बुद्धिमानी नहीं होगी। यह देखा गया कि मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और उचित आदेश पारित करने के लिए इस तरह की देरी को ध्यान में रखने के लिए न्यायालय को विवेक देना उपयोगी होगा।

(26) मैं इस तथ्य से भी अवगत हूं कि विधायिका ने विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित धारा के मसौदे को स्वीकार नहीं किया हालांकि मसौदे में भुगतान का कोई उल्लेख नहीं था। लागत का भुगतान आगे के अभियोजन के लिए एक शर्त होगी। मामले का इन शब्दों के महत्व को समझने के लिए मुझे कानून की स्थिति की जांच करनी होगी क्योंकि यह तब अस्तित्व में थी जब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद पुरानी संहिता के रूप में संदर्भित) लागू हुई थी।

(27) पुरानी संहिता का आदेश 17 नियम 1 अदालतों को किसी भी पक्ष को समय देने और लागत के भुगतान पर या अन्यथा मामले की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित करने का व्यापक विवेक देता है।

(28) वेंकू चटियार और अन्य बनाम दोराइसामी चेट्टियार 'और अन्य, (8) में, उस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने यह विचार किया कि जब तक

(8) ए.एल.आर. 1921 मद्रास 403.

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

लागत का भुगतान स्थगन से पहले की शर्त बना दिया गया था, प्रतिवादी के बचाव को रद्द करना अदालत के लिए खुला नहीं था जिसने लागत का भुगतान करने और फिर आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। एक पक्षीय। इस मामले में निर्धारित नियम ईस्ट इंडिया रेलवे कंपनी बनाम जीत मल कल्लो मल, (9) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था। इसमें स्पष्ट शर्त के साथ लागत के भुगतान पर स्थगन दिया गया था कि इस तरह के भुगतान को एक के रूप में माना जाना चाहिए स्थगन की मंजूरी के लिए पूर्व शर्त।

विद्वान न्यायाधीश ने माना कि उस स्थिति में अदालत के लिए यह खुला था कि वह प्रतिवादी की रक्षा को रद्द कर दे और एक पक्षीय कार्रवाई करे।

(29) इसी तरह का एक प्रश्न मैसर्स में इस न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश के समक्ष विचार के लिए आया। राम चंद एंड संस बनाम श्री कन्हया लाल भार्गव और अन्य (10)। उस मामले में वादी-प्रतिवादी द्वारा पुराने कोड के आदेश 11 नियम 21 के साथ पठित आदेश 29 नियम 3 के तहत एक आवेदन दायर किया गया था। उसमें यह प्रार्थना की गई थी। कंपनी के स्थायी निदेशक जुगल किशोर को अदालत में पेश होना चाहिए और यदि वह ऐसा करने में विफल रहते हैं तो बचाव पक्ष या प्रतिवादी को हटा दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने इस आवेदन का नोटिस विपक्षी पक्ष को जारी किया और आदेश दिया कि मामले में निर्धारित तिथि पर स्थायी निदेशक न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों। उक्त व्यक्ति की उपस्थिति के लिए कई स्थगन के बावजूद वह अदालत में उपस्थित होने में विफल रहा। न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि स्थायी निदेशक व्यक्तिगत रूप से उपस्थित न होकर जानबूझकर न्यायालय के आदेशों को नजरअंदाज कर रहे हैं। इसलिए आदेश दिया गया कि प्रतिवादियों का बचाव किया जाए। हटा दिया जाए इसके बाद मामले को पुनरीक्षण के तौर पर उच्च न्यायालय के समक्ष लाया गया। विद्वान न्यायाधीश ने पुनरीक्षण का निर्णय करते हुए कहा:-

> "..... इस प्रकार विद्वान न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में आश्चर्य का कोई तत्व नहीं था और यहां तक कि 16 मार्च और 1 अप्रैल, 1965 को प्रदान किए गए दो अवसरों पर भी याचिकाकर्ता कंपनी ने इसकी परवाह नहीं की। जुगल किशोर में। अब भी जब मैंने याचिकाकर्ता के वकील से कहा कि जुगल किशोर को निचली अदालत के समक्ष जल्द से जल्द पेश किया जा सकता है, तो उन्होंने इस पर आपत्ति जताई।

(9) ए.आई.आर. 1925 इलाहाबाद 280,

(10) 1966 सी.एल.जे. 69.

> आधार यह था कि यह कंपनी के अधिकार क्षेत्र में नहीं था इसके निदेशक को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए बाध्य करना। इन परिस्थितियों में, मेरी राय है कि न्यायालय ने जिस स्थिति का सामना किया था, उससे निपटने के लिए उसने यह कदम उठाया...

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस मामले में अत्यधिक कार्रवाई की गई। क्योंकि प्रतिवादी की चूक को दुर्भावनापूर्ण और जानबूझकर किया गया माना गया था। इसी तरह के विचार नागपुर उच्च न्यायालय ने मानकलाल भीमराज महेसरी बनाम माउंट फूलाबाई भीमराज महेसरी की विधवा और एक अन्य (11) में और मद्रास उच्च न्यायालय ने पॉपुले केसवैया बनाम पोपुला वेंकोयम्मा (12) में व्यक्त किए थे। संक्षेप में कानून की पिछली स्थिति तब भी यही थी जब स्थगन होता था। लागत के भुगतान पर दी गई अनुमति लागत का भुगतान न करने की स्थिति में बचाव पक्ष से हटने के मुकदमे को खारिज करने के संबंध में कार्रवाई तब तक उचित नहीं मानी गई जब तक कि पुरस्कार न दे दिया जाए। स्थगन की मंजूरी के लिए लागत को एक शर्त बना दिया गया था। विधानमंडल कानून की इस स्थिति से अवगत था और विचाराधीन अनुभाग में उन शब्दों को शामिल करके कि लागत का भुगतान एक शर्त माना जाएगा, इसने केवल इस अर्थ में एक छोटा कदम आगे बढ़ाया कि जब न्यायालय ने ऐसा व्यक्त नहीं किया था इसके आदेश में स्थगन देने की एक शर्त थी इसे कानून के मामले के रूप में पढ़ा जाना था। अन्य सभी मामलों में कानून अपरिवर्तित रहता है। जिस प्रकार पुरानी संहिता के तहत न्यायालय को स्वयं ही मुकदमे को खारिज करने या बचाव पक्ष को रद्द करने के संबंध में आदेश पारित करना पड़ता था वही काम अब नई संहिता के तहत भी करना पड़ता है। जैसा कि पहले देखा गया था यदि विधायिका का कानून की पिछली स्थिति से पूर्ण विचलन करने का कोई इरादा था तो वह आसानी से यह निर्धारित कर सकती थी कि लागत का भुगतान न करने पर मुकदमा खारिज होने या हड़ताल पर जाने का स्वत: प्रभाव होगा।

(30) यदि समस्या पर उनके आधिपत्य की टिप्पणियों के आलोक में विचार किया जाए तो उपर्युक्त विचारों को अलग रखा जाए। बाबू राम उपाध्याय के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट का भी यही निष्कर्ष होगा। इस मामले में निर्धारित सिद्धांतों में से एक, जैसा कि पहले देखा गया है, यह देखने के लिए है कि क्या अंदर है

(11) ए.आई.आर. 1939 नागपुर 213.

(12) ए.आई.आर. 1954 मद्रास 267.

"क्या" शब्द के प्रयोग के बावजूद किसी क़ानून में निहित प्रावधान अनिवार्य था या नहीं न्यायालय को क़ानून के सभी प्रावधानों पर समग्र रूप से विचार करके यह निर्णय लेना था। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण न्यायालय को न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के बजाय उन्हें पूरा करना होता है। यह सार्वजनिक हित में है कि जहां तक संभव हो पक्षों द्वारा उठाए गए विवाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना चाहिए क्योंकि कानून की अदालतें न्याय प्रशासन के मुकाबले अनुशासन लागू करने के विचार में प्रमुखता का स्थान नहीं देती हैं। माणकलाल भीमराज महेरी की देखरेख में (सुप्रा) नागपुर उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच, जिसके विवियन बोस थे। जे. (तब विद्वान न्यायाधीश के रूप में) सदस्य थे, ऐसा देखा गया

> ".....इसे एक निश्चित प्रस्ताव के रूप में रखा जा सकता है जो शायद ही उन अपवादों को स्वीकार करता है कि न्यायालयों को योग्यता पर विचार किए बिना मामले को प्रकाश में नहीं लाना चाहिए। यह भी समान रूप से स्पष्ट है कि न्यायालय डिफ़ॉल्ट के लिए खारिज करने के लिए नियमों में बंधे हैं।

यदि इस प्रावधान को अनिवार्य माना जाता है और इसके उल्लंघन के बाद मुकदमे का फैसला ट्रायल कोर्ट द्वारा गुण-दोष के आधार पर किया जाता है तो आम तौर पर उस चरण के बाद की कार्यवाही को गैर-कानूनी माना जाना चाहिए जब इस प्रावधान का उल्लंघन किया जाता है लेकिन संहिता की धारा 99 स्पष्ट रूप से इसमें कहा गया है कि योग्यता को प्रभावित न करने वाली त्रुटि या अनियमितता के लिए किसी डिक्री को उलटा या संशोधित नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार यदि इस प्रावधान को पुरुषवादी चरित्र से जोड़ा जाता है तो परिणामी स्थिति संहिता की धारा 99 के साथ टकराव में आने की संभावना है। अन्यथा भी इस आशय का प्रचुर अधिकार है कि यदि किसी मामले की सुनवाई के दौरान प्रक्रिया में कोई त्रुटि होती है तो इसे तब तक नजरअंदाज किया जाना चाहिए जब तक कि निश्चित रूप से किसी पक्ष के साथ कुछ स्पष्ट अन्याय न हुआ हो। जहां तक जांच संबंधी मामलों का सवाल है अदालतें विवाद के गुण-दोष की तुलना में उन्हें अधिक महत्व देती हैं। कोड में दस्तावेजों के उत्पादन, मुद्दों की सुनवाई आदि के संबंध में कई प्रावधान हैं। जो अनिवार्य रूप में शामिल हैं और फिर भी उनके उल्लंघन

को अपीलीय न्यायालयों द्वारा निर्णय के अनुसार अधिक परिणामकारी नहीं माना जाता है। मामले में प्रस्तुत अन्यथा न्यायसंगत है

(31) लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि क़ानून के आदेश, भले ही वह प्रकृति में निर्देशिका हो को कानून की अदालतों द्वारा भी अनदेखा किया जाना चाहिए

आनंद प्रकाश बनाम भारत भूषण राय और अन्य (एम. आर. शर्मा, जे.)

यदि उचित स्तर पर आपत्ति उठाई जाती है। यदि लागत के भुगतान पर स्थगन दिया जाता है तो न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य होगा कि उसका आदेश सुनवाई की अगली तारीख पर लागू हो। यदि उस सुनवाई पर लागत का भुगतान नहीं किया जाता है तो आम तौर पर बोलते हुए कोई और स्थगन नहीं दिया जाना चाहिए जब तक कि डिफ़ॉल्ट वादी उस पाठ्यक्रम को अपनाने के लिए एक मजबूत मामला नहीं बनाता है। जिसमें तमाम आकस्मिकताओं की कल्पना करना बेमानी होगी. कलाकारों के पुरस्कार और उनके भुगतान न होने के बावजूद आगे के स्थगन के अनुरोध को स्वीकार किया जा सकता है। मैं बस इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि स्थगन का अनुरोध स्वीकार किया जाना चाहिए यदि यह वास्तविक प्रतीत होता है और उन परिस्थितियों से उत्पन्न होता है जो डिफ़ॉल्ट वादी के नियंत्रण से परे हैं। यदि व्यक्ति स्थगन की लागत और अपनी जेब से भुगतान करने के लिए तैयार है रास्ते में उठाया जाता है, तो अदालत के लिए उसे लागत के भुगतान के लिए अतिरिक्त समय देना निश्चित रूप से वैध होगा। इसी प्रकार यदि किसी सहायक कार्यवाही के दौरान स्थगन दिया जाता है और दोषी वादी लागत का भुगतान करने में असमर्थता के संबंध में एक प्रशंसनीय मामला पेश करने में सक्षम है, तो न्यायालय की धारा 35-बी की उप-धारा (2) के प्रावधानों का सहारा ले सकता है। और उसे मुख्य मामले के साथ आगे बढ़ने की अनुमति दें। गरीबी से जूझ रहे एक वादी के दृष्टिकोण से दांव मेरी सुविचारित राय में इस मामले को ट्रायल जज के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए जिन्हें इसे विधि आयोग द्वारा दी गई चेतावनी के नोट के आलोक में तय करना चाहिए जिसे अंततः विवादित धारा के रूप में वैधानिक सिफारिश मिली। यदि ट्रायल कोर्ट द्वारा विवेक का प्रयोग उचित तरीके से किया जाता है, तो वरिष्ठ न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि यह विधानमंडल की नीति है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 और 115 में

प्रकट होती है जो इनसे प्रभावित होती है। मंजीत सिंह बनाम भारतीय स्टेट बैंक में डिवीजन बेंच के (सुप्रा) सदस्य के रूप में मैंने निम्नानुसार एक विचार देखा –

> "इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रयुक्त भाषा प्रकृति में पूर्व-खाली है, लेकिन 'करेगा' शब्द का उपयोग केवल यह इंगित नहीं करता है कि जिस न्यायालय ने सार को जब्त कर लिया है, उसके पास मामले में कोई विवेक नहीं है। इसमें उचित आदेश पारित करने के लिए डिफ़ॉल्ट की डिग्री, कार्यवाही की प्रकृति और चरण को ध्यान में रखना होगा।

उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, मेरा विचार है कि:

(ए) प्रावधान प्रकृति में निर्देशिका है ; लेकिन

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

(बी) फिर भी न्यायालयों के लिए इसे नजरअंदाज करना उचित नहीं होगा। यह प्रावधान. यदि उचित समय पर कोई आपत्ति उठाई जाती है तो न्यायालय कानून के पत्र के अनुसार एक दायित्व के अधीन होगा जब तक कि दोषपूर्ण वादी एक अलग मामले के लिए एक मजबूत मामला नहीं बनाता है।

मामला अब निर्णय के लिए डी.बी. के समक्ष रखा जाएगा।

एस.एस. संधुवालिया, सी. जे.

(32) मुझे अपने विद्वान भाइयों जैन और शर्मा, जेजे द्वारा दर्ज किए गए विस्तृत और स्पष्ट निर्णय को पढ़ने का सौभाग्य मिला है। शर्मा, जे., आई. द्वारा व्यक्त विचार अत्यंत सम्मान के साथ जैन, जे से सहमत हूँ।

न्यायालय का आदेश

(33) बहुमत के निर्णय के अनुसार यह माना जाता है यदि कोई पक्ष लागत लगाने वाले आदेश की अगली तारीख को लागत का भुगतान करने में विफल रहता है तो अदालत के लिए

यह अनिवार्य है कि वह मुकदमे की कार्यवाही या मुक़दमे को आगे बढ़ाने की अनुमति न दे जैसा भी मामला हो और ऐसा न हो। अन्य असंगत विचार-विमर्श से अपराधी पक्ष के विरुद्ध अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में न्यायालय को कठिनाई होगी। हालाँकि जहां चूककर्ता पक्ष के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के परिणामस्वरूप लागत का भुगतान नहीं किया जाता है तो अदालत अपने अधिकार क्षेत्र में होगी कि वह कोल की धारा 148 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग चूककर्ता पक्ष के पक्ष में करे यदि कोई मजबूत हो। ऐसे न्यायशास्त्र के अभ्यास से आसानी होती है

(34) पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी जाती है और ट्रायल कोर्ट के 6 सितंबर, 1978 के आदेश को रद्द कर दिया जाता है और प्रतिवादियों को आगे बचाव के लिए मुकदमा चलाने से रोक दिया जाता है। पार्टियों को अपना खर्च स्वयं वहन करने की आवश्यकता है।

(35) पक्षकारों को उनके विद्वान वकील के माध्यम से 20 जुलाई 1981 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया है।

एन.के.एस.

2569 एचसी-सरकारी प्रेस, सी अच. डी.

(अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा मैं इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है | सभी व्यवहारिक और अधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा |

अमित वर्मा - अनुवादक